सामाजिक सुधारों का सिलसिला

प्रकाश कान्त

हर समाज के विकासक्रम में उसके तल में कुछ गाद और दीगर तलछट जमा होती रहती है। जड़ता भी आने लगती है। धर्म में भी! समय-समय पर होने वाले सामाजिक और धार्मिक सुधार के आन्दोलन इसी गाद-तलछट को हटाने, साफ करने और जड़ता को तोड़ने का काम करते हैं। भारतीय समाज में भी इस तरह के सुधारों का एक लम्बा सिलसिला मौजूद रहा है। मध्यकाल में यह सिलसिला तेज़ हुआ और ब्रिटिश काल में उसमें एक अलग तरह की धार आ गई। चाहे ब्रह्म समाज हो या आर्य समाज या फिर महाराष्ट्र के ज्योतिबा फुले का सत्य शोधक समाज – इन सब ने निकट की पिछली कुछ शताब्दियों में धर्म-

समाज इत्यादि से जुड़े बहुत सारे अन्धविश्वास, रूढ़ियों और दुराग्रहों पर सवालिया निशान लगाए, एवं उन पर बहसें शुरू कीं। जाति, समाज, शिक्षा, स्त्री-शिक्षा, सामाजिक भेदभाव, ऊँच-नीच, बाल-विवाह, सती-प्रथा, अस्पृश्यता इत्यादि को लेकर अनेक प्रश्न खड़े किए, इनके मनुष्य विरोधी चरित्र और उनमें निहित अवैज्ञानिकता का खुलासा किया। ज़ाहिर है, इन सबके अपेक्षित सकारात्मक परिणाम भी निकले। बहुत सारे बदलाव आए और उससे भी महत्वपूर्ण, आगे की ज़मीन तैयार हुई।

इन सुधारों के बारे में बहुत सारी बातें सामाजिक अध्ययन की प्रचलित पुस्तकों में भी बताई गई थीं। लेकिन उनका स्वरूप मोटे तौर पर सूचनात्मक था; सामान्य जानकारी-नुमा! ये जानकारियाँ इन आन्दोलनों के पीछे जिस तरह के प्रश्न, तर्क, बहसें, चिन्ताएँ और आरोप थे, उन्हें नहीं उभारती थीं। जबकि नवाचार के पाठों में इस तरह की कोशिशें की गई थीं। दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, ज्योतिबा फुले, डॉ. भीमराव अम्बेडकर इत्यादि के कामों को उनके विचार और तर्कों के साथ इन पाठों में रखा गया था।

सामाजिक कुरीतियों पर संवाद

इन पाठों को पढ़ाते समय बच्चों से तरह-तरह की बातें हुईं। कुछ जगह उन्हें हँसी भी आई। खासकर,

जब मैंने पाठ में लिखी गई इस बात का ज़िक्र किया कि पहले लड़कियाँ इसलिए नहीं पढ़ती थीं क्योंकि यह मान्यता थी कि अगर लड़कियाँ पढ़ेंगी तो उनके पति मर जाएँगे! इस डर और भ्रान्त धारणा के खण्डन में जब मैंने अपना उदाहरण देते हुए यह बात जोड़ी कि अगर ऐसा होता तो मुझे तो बहुत पहले ही मर जाना चाहिए था क्योंकि मेरी पत्नी न सिर्फ मेरे बराबर ही पढ़ी-लिखी है बल्कि पास के गाँव अरलावदा के स्कूल में यही सामाजिक अध्ययन पढ़ा रही है, तो यह सुनकर, उनकी हँसी एक सामूहिक ठहाके में बदल गई! इस सन्दर्भ में मैंने विस्तार से बताया कि लड़कियों की शिक्षा के रास्ते में शुरू के सालों में कितनी सारी दिक्कतें थीं!

इस सिलसिले में अपने मानकुण्ड स्कूल का उदाहरण दिया जहाँ 1983 के पहले तक एक भी लड़की नहीं थी, पाँचवीं कक्षा के बाद सारी लड़कियाँ पढ़ाई छोड़ देती थीं! शिक्षकों के सामूहिक प्रयासों से बहुत मुश्किल से लड़कियाँ पढ़ने आने लगीं। इसी तरह सती-प्रथा के बारे में उन्होंने पाठ के ज़रिए जो थोड़ा-बहुत सुन रखा था, उसे और व्यवस्थित रूप से समझा। वैसे, यह भी सही है कि जिन सामाजिक कुरीतियों का ज़िक्र इन पाठों के सिलसिले में ज़रूरी था, उनमें से कई ग्रामीण समाज में अब भी मौजूद थीं। खासकर, बाल-विवाह, अस्पृश्यता, सामाजिक भेदभाव वगैरह। जब कक्षा में इन्हें लेकर चर्चा की तो थोड़ी-सी हलचल हुई। मुझे उसमें से ही पाठ के लिए जगह निकालनी पड़ी।

कृषि का इतिहास व वैश्विक परिप्रेक्ष्य

इसी तरह, कई सौ सालों में हुए खेती-किसानी के विकास; यूरोप, अमेरिका और भारत की खेती के फर्क; खेती की ज़मीन पर लगने वाले करों के बदलते स्वरूप और किसान की मुश्किलों के बारे में अलग-अलग पाठों से गुज़रकर बहुत विस्तार से जाना-समझा। उन्हें यह जानकर हैरानी भी हुई कि मुगल काल और उसके पहले इतनी ज़मीनें थीं कि किसान अपनी ज़मीन वैसे ही छोड़कर एक से दूसरी जगह चले जाते थे। वहीं अँग्रेज़ों के शासन काल तक ज़मीनों की कमी तो हो ही गई थी और अगर किसान किसी कारण लगान नहीं चुका पाते थे तो सरकार उनकी ज़मीनें नीलाम कर लगान वसूल करती थी। इन्हीं पाठों के दौरान बच्चे अपने घर से इस बात का पता करके आए कि अब उनके परिवार को अपनी ज़मीन पर कितना कर (लगान) देना पड़ता है।

तीनों कक्षाओं के इतिहास, भूगोल व नागरिकशास्त्र, तीनों खण्डों में खेती-किसानी के बारे में अलग-अलग तरह की जो चर्चा हुई, उससे इस विषय के सिलसिले में मेरी समग्र रूप

से एक समझ बनी। मुझे लगा कि बच्चे चूँकि गाँव के हैं और खुद खेती-किसानी से जुड़े हुए हैं इसलिए मैं अपनी उस समग्र समझ के आधार पर पिछले हज़ारों सालों में विकसित मनुष्य के इस महत्वपूर्ण व्यवसाय के बदलावों, उसकी समस्या, संकट, सीमा एवं विविधताओं को लेकर एक आधारभूत समझ बना सकता हूँ। और उन्हें कृषि को एक बड़े फलक पर देखने के लिए तैयार कर सकता हूँ। बच्चे यह तो जान चुके थे कि मनुष्य ने खेती करना किस तरह सीखा और खेती का फैलाव किस तरह धीरे-धीरे हुआ।

इसके आगे मैंने कुछ और चीज़ें जोड़ीं। जैसे, जिसका अभी उल्लेख किया कि मुगल काल तक तो हमारे यहाँ खेती योग्य ज़मीन पर्याप्त उपलब्ध थी। बाद में ज़मीनें कम होती गईं जबकि आज भी अमेरिका में आम तौर पर किसानों के पास इतनी ज़मीन है कि दवा वगैरह छिड़कने के लिए हेलीकॉप्टर का उपयोग करना पड़ता है। बोनी से लेकर कटाई तक का सारा काम बड़ी मशीनों से करना पड़ता है। रेल लाइन उनके खेतों में से जाती हैं और वे अनाज को खेत से ही मालगाड़ी में लदवा देते हैं। दूसरी ओर, जापान में ज़मीनों का

रकबा कम होता है। किसान हाथ से चलने वाली छोटी मशीनों से उन पर खेती करता है। मैंने यूरोप की खेती का भी ज़िक्र किया। जहाँ के खेतों की मिट्टी ठण्ड के कारण पत्थर जैसी सख्त हो जाती थी और खेती के लिए उसे तैयार करना उन दिनों बहुत कठिन हुआ करता था। इसीलिए वहाँ का किसान उन दिनों बहुत कम फसल ले पाता था। हमारे देश जैसी फसलों की विविधता भी नहीं थी वहाँ! इसके अलावा मशीनों का उपयोग शुरू होने के पहले अमेरिका में घोड़ों का उपयोग होता था जबकि हम बैल का उपयोग करते थे।

इसी सिलसिले में हरित क्रान्ति का ज़िक्र हुआ। उससे उत्पादन में हुई वृद्धि के साथ-साथ उससे जुड़ी दिक्कतों पर भी बात की गई। इस तरह, खेती के इतिहास के साथ-साथ खेती के राष्ट्रीय और वैश्विक परिदृश्य पर अलग-अलग पाठों में आई जानकारियों को सिलसिलेवार जोड़कर बात करना, खुद मेरे लिए काफी सन्तोषजनक रहा। बच्चों ने तो खैर बहुत दिलचस्पी ली ही! इस मामले में मेरे सामने भी यह चुनौती थी कि कृषि से जुड़ी इतनी सारी विविधताओं को लेकर बच्चों के सामने एक समग्र दृश्य किस तरह खड़ा कर पाऊँगा। और बच्चे उसे कितना समझ पाएँगे! लेकिन छोटी-मोटी कमी-खामियों के बावजूद यह किया जा सका।

आदिवासी जीवन और प्रतिरोध

एक विशेष बात थी कि इस सामाजिक अध्ययन के कई अलग-अलग पाठों में आदिवासियों की अलग-अलग तरह से चर्चा थी। अगर उनमें अमेरिका के आदिवासियों की चर्चा थी, तो सम्राट हर्ष के समय एक बिलकुल भिन्न जीवन पद्धति वाले शबर वनवासियों की भी थी। कहीं झूम खेती करने वाले आदिवासी थे तो मज़दूरी करने वाले आदिवासी भी। आदिवासी भारतीय समाज में हाशिए पर रहे हैं। आदिवासियों का जंगल से सदियों से एक सहज, स्वाभाविक और स्वतंत्र रिश्ता रहा था। वे पूरे जंगल को अपना मानते थे। इस जंगल पर निर्भर, उनकी एक स्वतंत्र जीवन पद्धति थी।

जंगल से उनके रिश्तों में बदलाव अँग्रेज़ों के आने के बाद आया। सैकड़ों सालों से जंगल पर चला आ रहा उनका अधिकार छीन लिया गया। अँग्रेज़ों द्वारा बनाए गए कानून उन्हें बात-बात पर अपराधी ठहराने लगे। उनकी स्वतंत्र जीवन पद्धति संकट में पड़ गई और अन्ततः उन्हें विद्रोह के लिए बाध्य होना पड़ा, जिस तरह किसानों को होना पड़ा था। ये पाठ बच्चों की सामाजिक और ऐतिहासिक चेतना को नया विस्तार देते थे। और इस बात को समझाने की कोशिश करते थे कि इस तरह के विद्रोह किस तरह देश के स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे

थे जिसके चलते आखिरकार एक लम्बी लड़ाई के बाद देश को अँग्रेज़ी शासन से 15 अगस्त, 1947 को आज़ादी मिल पाई थी।

इतिहास-बोध और प्रश्नशीलता

इन पाठों के ज़रिए बच्चों की सिर्फ जानकारियाँ ही नहीं बढ़ रही थीं बल्कि उनके भीतर अपने विषय के कुछ बुनियादी तर्क भी विकसित हो रहे थे और उनके दिमाग में छोटे-छोटे ज़रूरी सवाल भी पैदा होने लगे थे। इनका सामना मुझे पाठ पढ़ाते वक्त करना पड़ रहा था। आखिर लोगों से बेगार क्यों करवाया जाता था या अगर ज़मींदार के यहाँ मोटर खरीदी जा रही थी या शरीर पर उत्पन्न हुआ कोई फोड़ा पकाया जा रहा था तो इन सबका भी कर किसान से क्यों वसूला जा रहा था वगैरह!! ऐसे सवालों का पैदा होना ही उनकी समझ बनने की शुरुआत थी। मुझे लगता है कि इसी तरह की समझ के आधार पर बच्चों में ज़रूरी किस्म का इतिहास बोध भी विकसित हो पाता है!

इतिहास पढ़ने-पढ़ाने का एक मकसद यह भी होता है कि हम यह

जान सकें कि हमारी या मनुष्य की अब तक की यात्रा किस तरह की रही है। ज़ाहिर है, यह यात्रा बहुत आसान नहीं रही है। अपनी इस यात्रा में मनुष्य कई अलग-अलग तरह के अनुभवों से गुज़रा है। अच्छे-बुरे, दोनों तरह के अनुभव। इन अनुभवों से उसने लगातार सीखा है। हर दौर की कुछ खास तरह की बहसें रही हैं। इन बहसों ने मनुष्य के भौतिक जीवन के साथ-साथ उसकी विचार प्रक्रिया को भी विस्तार दिया है। आज मनुष्य अपनी संवेदना, विचार और भौतिक विकास के जिस बिन्दु पर खड़ा है, वह इतिहास की इस लम्बी, ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी यात्रा के कारण सम्भव हुआ है। इतिहास का अध्ययन यही सब जानने एवं अनुभव करने के लिए है। अपने काम के दौरान मैं उन दिनों अपने अनुभव के आधार पर यह सोच पा रहा था कि इतिहास की पाठ्य-सामग्री, उसका प्रस्तुतीकरण, पढ़ने-पढ़ाने का तरीका अगर इस नवाचार के पाठों की तरह अगली कक्षाओं में भी बना रहे तो बच्चों में मनुष्य के संघर्षपूर्ण अतीत को वस्तुनिष्ठ ढंग से देख पाने वाली एक दृष्टि पैदा की जा सकती है। इतिहास द्वारा मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया को कहीं ज़्यादा स्पष्ट किया जा सकता है!

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश, संस्मरण – एक शहर देवास, कवि नईम और मैं, और फिल्म पर एक पुस्तक – हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

सभी चित्र: हरमन: चित्रकार हैं। दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक और अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। भटिंडा, पंजाब में रहते हैं।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।